# विश्वास की रजत सीपियाँ

उषा 'राजे' सक्सेना

# विश्वास

# की

# रजत सीपियाँ

**उषा राजे सक्सेना**

## उषा राजे सक्सेना

गोरखनाथ की जन्मभूमि गोरखपुर (उ.प्र.) में श्रीमती उषा राजे सक्सेना का जन्म हुआ। जन्म-घुट्टी में ही आपको रूहानी आध्यात्मिक संस्कार मिल गए थे क्योंकि उनके दादा महर्षि शिवव्रतलाल वर्मन जितने बड़े तपस्वी और साधक थे, उतने ही बड़े लेखक भी थे। उन्होंने अपने जीवन-काल में विविध विषयों पर तीन हजार पांच सौ पिचानवें ग्रंथ लिखे। प्रसिद्ध पत्रकार खुशवन्त सिंह ने इनके संबंध में हिंदुस्तान टाइम्स में यहां तक लिखा : 'द कार्पस ऑफ हिज वर्क बुड मेक द गिनीज बुक ऑफ रिकार्ड्स फार द मोस्ट-प्रालिफिक राइटर इन एनी लैंग्वेज।'

उषा जी की शिक्षा-दीक्षा गोरखपुर में ही हुई। वहाँ से अंग्रेजी में एम. ए. करके आप लन्दन पहुंच गई और पिछले तीन दशकों से वहीं कार्यरत हैं। आप लन्दन में शिक्षा-कार्य में रत हैं। इसके साथ-साथ उषा जी लन्दन की हिंदी कार्य समिति की सक्रिय सदस्या भी हैं और पिछले कई वर्षों से हिंदी साहित्य के प्रचार-प्रसार के अंतर्गत कवि-सम्मेलनों तथा सांस्कृतिक अनुष्ठानों का संयोजन भी करती रही हैं।

उषा जी का लेखन बाल साहित्य से शुरू हुआ। बाल कथा साहित्य पर अंग्रेजी में इनकी चार पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इसी के समानांतर हिंदी में वे कविताएं लिखती रही, जो भारत में सरिता, कादम्बरी, अंजुरि और सहचर में तथा नार्वे की स्पाइल जैसी पत्रिकाओं में बराबर छपती रही हैं। इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन से 'इन्द्रधनुष की तलाश में' इनका पहला हिंदी कविता-संग्रह प्रकाशित हुआ। अब प्रस्तुत है यहीं से आपका दूसरा हिंदी कविता-संकलन 'विश्वास की रजत सीपियाँ'। साहित्य-प्रांगण (हिंदी हो या अंग्रेजी) आशान्वित ही नहीं अपितु पूर्णरूपेण विस्वस्त है कि भविष्य में भी उनकी कलम अबाधगति से चलती रहेगी।

**डॉ. लक्ष्मणदत्त गौतम**

**रीडर, हिंदी-विभाग**

**दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**

# आंतरिक ऊष्मा की कविताएँ

उषा राजे सक्सेना की यह कविताएं पढ़ते हुए दो ही बातें मन में उठीं कि एक तो औरत अकेली होती ही है,-शायद सभी अकेले हैं, पर औरत का अकेलापन और भी ज्यादा अकेला है; उसके साथ ही यदि उसका देश भी छूट जाये, तो वह खुद अपने लिए परदेस बन जाती है। अपने मन में व्याप्त यह 'परदेस' बहुत दाहक होता है।

उषा की इन रचनाओं में वह आंतरिक दाहकता मौजूद है जो रचना के लिए किसी को विवश करती है.... शायद यहीं से रचना का आगाज भी होता है। अच्छा यह है कि उषा की यह कविताएं किसी अधैर्य की उपज नहीं है इनमें वह आंतरिक ऊष्मा और ऊर्जा मौजूद है जो कविता को निजता प्रदान करती है-एक जमीन देती है। संकुल और प्रवासी-परदेसी मन के बिखरे रूपाकारों को शब्द मिल जाते है तो वे शब्द अपनी तरतीब भी तलाश लेते हैं। उसी की इन कविताओं में प्रिज्म की तरह चमकते शब्दों के साथ-साथ वह तरतीब भी मिल जाती है-क्या यह काफी नहीं है?

मैं कवि नहीं हूं इसलिए मैं कविता में हमेशा कविता को तलाशता हूं। बाकी तो कविता के मर्मज्ञ बतायेंगे, लेकिन मुझे इन शांत ऊष्मापरक शब्दों के बीच कहीं-कहीं कविता भी मिली है और वे चिंतायें भी, जो इस दौर को लगातार आहत करती रही हैं। अपने अंदर के परदेस में जन्मी यह कविताएं अच्छी भी लगती हैं और आश्वस्त भी करती हैं।

**कमलेश्वर**

**नई दिल्ली (भारत)**

## अन्त:सलिला का आयासहीन प्रवाह

कहते हैं (वह) अकेला नहीं रमा, क्योंकि अकेला कोई नहीं रमता। रमने के लिए उसने यह हग्विषय रचा। सृष्टि के जन्म के मूल में आत्माभिव्यक्ति की अकुलाहट है। कविता के जन्म कई मूल में भी यही भाव है। सृष्टि एक मौलिक रचना है उसी के अनुरूप होने के कारण काव्य भी। समूची सर्जना का आधार वाक् है। ऋग्वेद के दशममण्डल के इकहत्तरवें सूक्त में वाणी के उत्स को लेकर कहा गया है। 'नामधेयं दधाना: यत् प्रथम् वाच:'।

रचना का कारण प्रतिभा है। वह जन्मजा भी होती है और संगजा भी। अनुकूल परिवेश न हो तो सोई की सोई रहती है। उषा जी के साथ भी यही हुआ होगा। विदेशी धरा के पथराये एकांत में काव्यसृजन-कोई करे भी तो! क्यों करे यह अरण्यरोदन? संयोग से कई वर्ष पूर्व लंदन का 'भारत भवन' एक कवि-गोष्ठी का आयोजन कर बैठा जिसमें हम कई कवि सम्मिलित होने गए। सिलसिला तीन-चार नगरों में छ: दिन चला। इस तरह शुरू हुई उषा जी की सृजन यात्रा-अन्त: सलिला का आयासहीन प्रवाह जो कहीं समाजोन्मुख है तो कहीं बेसुधी में डूबा एकालाप।

आज की हिंदी कविता के मुहावरे से अलग थलग-सी होकर भी अपने आवाप-उद्वाप अपनी सहजता और अन्त:लयपरण कथन-भगिमा के कारण ये रचनायें पठनीय तो हैं ही काफी अंशों तक एक सराहनीय शुरुआत भी।

**डॉ. कैलाश वाजपेयी**

**नयी दिल्ली**

*एक पत्थर था,*

*जिसके अंदर एक पानी का सोता बंद था*

*एक दिन पत्थर को एक-स्नेह स्पर्श छू गया*

*और पानी का बंद सोता फूट बह निकला*

*समर्पित है उस स्पर्श को*

*पद्मश्री डॉ0 शिवमंगल सिंह 'सुमन' को*

*जिसने मेरे अंदर एहसास और*

*शब्दों का जादू जगाया-*

# आमुख

जब श्रीमती उषा सक्सेना ने मुझे यह भूमिका लिखने के लिए कहा तो मुझे आश्चर्य हुआ। आश्चर्य इस बात का, कि इंग्लैण्ड में रहते हुए भी हिंदी के प्रति उषा जी की इतनी आस्था है कि भारतीय संवेदना-शक्ति में सनी हुई ऐसी कविताएँ लिख पा रही हैं-कहीं भारत की स्नेही आत्मीयता, कहीं मेरे देश की ठंडी, संगदिल मनोवृतियों! और आश्चर्य इस बात का, कि इस शुभ कार्य के लिए मुझ जैसे हिंदी के नौसिखिये को क्यों चुना जा रहा है, जब कि मेरे चारों ओर-लन्दन में भी -सैकड़ों ऐसे योग्य हिंदी-प्रेमी हैं जिनको मुझसे कहीं अधिक अधिकार है हिंदी कविता का विश्लेषण करने का। परंतु आश्चर्य की इन भावनाओं के साथ-साथ मुझे आनंद भी आया; आनंद इस बात का, कि मुझे मौलिक कविता-सृजन के साथ जुड़ जाने का सुअवसर प्रदान किया जा रहा है। कविता और संगीत-इन दो कलाओं के माध्यम से हमें उन भावनाओ को महसूस करने का मौका दिया जाता है जो जीवन की जड़ों की सिंचाई करती हैं। ऐसी भावनाओं के बिना हमारा जीवन नीरस और निरर्थक हो जाएगा। जब तक हमारे हृदय में यह जानने की जिज्ञासा पैदा न हो जाए कि उस सुदूर क्षितिज के पास कैसा देश होगा, जब तक हमारे मन में उस देश की असीमित संभावनाओं में टहलने की इच्छा जाग्रत न हो जाए, जब तक हमारी अपनी दुनिया की साधारणता हमें क्षुब्ध करती रहेगी; जब तक सपना न हो, एक दूसरी दुनिया का खाब न हो, तब तक जागने के भी क्षण निस्तेज एवं अर्थहीन लगेंगे। उषा जी उस इन्द्रधनुष की तलाश में है जो हम सब को आकर्षित करता है। ये कविताएँ हैं उस तलाश का सफरनामा। हरेक यात्रा की भाँति इस यात्रा में भी कई प्रकार के अनुभव भीगे जाते हैं-उल्लास के भी क्षण है, डर के भी कहीं आशा की लौ झलकने लगती है, कहीं निराशा के बादल छा जाते हैं। यह एक अत्यन्त भावात्मक जगत हैं जिसको उषा की किरणों ने आलोकित कर दिया है-भावनाओं का एक सुंदर भवन है जिसके कई कमरों में हमें भ्रमण करने का नियंत्रण प्रस्तुत किया जा रहा है। आइए प्रवेश करके देखें.....

**रूपर्ट स्नेल**

**स्कूल ऑफ ऑरियंटल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज**

**लन्दन विश्वविद्यालय**

## रचना-प्रक्रिया

यूँ तो साहित्य एवं दर्शन में सदा से रुचि रही, आँखें खुली तो महर्षि शिवव्रत लारा वर्मन जी[1] की 3000 से अधिक पुस्तकें घर के दरों दीवार में रची-बसी पाई। घर में सूफियाना अदब था। गोरखपुर में रहते हुए भी हमारे घर में उर्दू-हिंदी-मिश्रित खड़ी बोली या अंग्रेजी बोली जाती थी।

शाम को सत्संग होता, जिसमें पास-पड़ोस के लोग आते, आत्मा-परमात्मा लोक-परलोक की व्याख्या दार्शनिक ढंग से की जाती, जो मेरे समझ में तो न आती, पर अच्छी लगतीं। सब-कुछ अद्भुत रस से भीगा-भीगा-सा लगता। फिर एक अवसाद, एक पीड़ा का अनुभव होता। मन विकल, व्यथित और अंतर्मन आकुल हो जाता। जाने किस व्यथा के तपन से तपती। कोई अदृश्य इष्टदेव था जिसके लिए विकल रहती।

ढेरों प्रश्न स्वप्नों में तबदील हो जाते। साहित्य-क्षितिज का रहस्य मन पर छाप डालने लगा। गोरखपुर का प्राकृतिक वातावरण स्त्री की पुतलियों में समाने लगा। लिखने लगी पर किसी को बताया नहीं।

फिर हर विषमता पर जी दुखता, हर अन्याय पर अनमनी हो जाती, समर्थ परिवार में जन्म लेने के कारण अपराध-बोध भी होता। धीरे-धीरे आर्थिक-सामाजिक विषमता (प्रवास में) रंग-भेद, वर्ग-भेद, नारी जाति का दलित इतिहास, शोषण, धन-लोलुपता, स्वार्थ-परता, राजनीति, प्रदूषण, पर्यावरण, आंतरिक विघटन, स्थानीयकरण, जीवन-प्रपंच आदि मेरे स्वप्निल संसार को सुधी-सोच में घसीटने लगे.....।

*दर्द की चीलें*

*चुहल करती*

*चोंच मारती*

*मुझे लहू-लुहान करती*

*और मैं*

[1] पिता जी के नाना'लोक सेवी संत जो 'हुजूर दाता दयाल' के नाम से जाने जाते हैं।

*नागफनी पर करवटें बदलती*

*दर्द से रिश्ता कायम करती*

*सन्नाटा बुनती*

*रहस्यमयी जाल में उलझती।*

यही उलझन, यही दर्द, यही सन्नाटा, यही रहस्य, मेरी रचना के प्राण हैं।

मैं कहना चाहूँगी, मेरे प्रवासी जीवन में, भारतीय संस्कृति के संवाहक एवं ज्ञान परम्परा के धनी महामहिम उच्चायुक्त डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी एवं श्रीमती कमला सिंघवी ने इंग्लैंड में हिंदी के लिए जो बहुआयामी कार्य एवं सहयोग दिया उसके लिए हम प्रवासी भारतीय उनके सदा-सदा के लिए कृतज्ञ रहेंगे। मैं स्वयं प्रवासी जीवन में ऐसी रच-बस गई थी कि 'हिंदी' बस पुस्तकालयों में रह गई थी। बात एक शाम की है, जब कमला जी एक अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन का संचालन कर रही थी मैं उनके शब्द-संयोजन पर ऐसी मुग्ध हुई कि विभोर-सी बिना किसी औपचारिकता का ख्याल किए कह बैठी, "कमला जी आप जब भी कभी बोलें, मुझे बुला लिया कीजिए।" कमला जी के अधरों पर भुवन-मोहिनी मुस्कान आई बोली, "अरे! उषा जी, मैं यह सब कहाँ करती हूँ यह तो यूँही बस करना पड़ा'। कमला जी की भाषा की सुकमारता और चित्रात्मकता मेरे मन पर गहरी छाप छोड़ गई और शायद मेरी विह्वलता उनके मन पर।

मेरे हृदय में अंकुरित हिंदी-प्रेम के बीज को उनकी सूक्ष्म दृष्टि ने ऐसा पहचाना कि उसको पल्लवित करने के लिए कुछ ही दिनों बाद अखिल भारतीय कवि सम्मेलन में आए पद्यश्री डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' एवं पद्मश्री बेकल उत्साही जी जैसी विभूतियों के अतिथ्य के सौभाग्य का सम्मान मुझे दिया। उनके आतिथ्य के सात दिन-मेरे जीवन के बहूमूल्य दिन, सात सुहागिनों से, दिन-रात आशीर्वाद देते-आकाशमंडल के सप्त ऋषियों से साहित्य, जीवन एवं दर्शन को उद्भाषित करते हैं-मेरे तन-मन को स्नेह और आशीर्वाद की वर्षा से भिगो-भिगो देते।

ये सात दिन मेरे जीवन के अमूल्य दिन! मेरे मन-प्राण हैं, मैं सोई थी-उन्होंने जगाया, मैं पत्थर थी-उन्होंने प्राणवान किया। प्यासी थी मैं-उन्होंने अमृत पिलाया-बंजर धरती पर धान की फसल उगा दी उन सात दिन की साहित्य-बेला ने।

सुमन जी मेरी साकार प्रेरणा बन, मेरे इष्ट बने जिनकी शायद जीवन में प्रतीक्षा थी! बेकल जी मेरे कबीर हैं जिनकी 'सारवी' मुझे बचपन से पास बुलाती थी। कमला जी वह स्नेह-कलश हैं जिसके अमृत को पीने की साध में मैं उम्र भर भटकती रही।

मेरी रचना प्रक्रिया में यह त्रिकोण इन्द्रधनुषी रंग विखेरता, विश्वास की रजत सीपियाँ बटोरता आपको मेरी भटकन, प्यास, खोज और भीगे-भीगे साहित्योन्मुख से मिलाता है। सुधी पाठक! अब ये भटकन और ये तन-मन के विविध कोण "विश्वास की रजती सीपियाँ" आपको सादर सौंपती हूँ।

**स्नेह-सिक्त**

**उषा राजे**

## अनुक्रम


| | |
|---|---|
| कोरा कागज | 14 |
| 'धनक' रंग वार गई | 16 |
| प्रतीक्षा | 18 |
| ओस-बूँद | 21 |
| विश्वास की रजत सीपियाँ | 22 |
| तुम्हारा मंत्र | 24 |
| यात्रा का प्रारम्भ | 26 |
| पद-चिह्न | 27 |
| पुनर्जन्म | 28 |
| स्मृतियाँ | 29 |
| यक्ष-प्रश्न | 30 |
| दर्द का तीखापन | 32 |
| पलकों के झरोखों से | 33 |
| अपनी ही देह-गंध से | 34 |
| अदृश्य | 35 |
| मन के चितेरे | 36 |
| पल | 37 |
| दर्द की चीलें | 38 |
| ओ! मेरे दुःख | 39 |
| जहां का दर्द | 41 |

एक टुकड़ा पत्थर का 42

लोग 44

बर्फ का टुकड़ा 45

स्पेन 46

प्रवास की व्यथा 47

नई फसल 48

विघटन 50

देवता और बुधिया 52

दोस्त 54

आदमी 55

नेता 56

हृदय-मुद्रिका 57

गरीब का सुख 58

लहरें 60

उसका वजूद 61

खंड-खंड हो गई 62

मृग-मारीचिका 63

कालचक्र 64

विकलांग की व्यथा 65

ओ! विक्रमादित्य 66

मन की छुअन 67

चुरा लो मुझे 68

| | |
|---|---|
| छलिया | 69 |
| सूरत और सीरत | 70 |
| रक्त पीता देव | 71 |
| 'मशरूम' | 73 |
| बेचारे मच्छर | 75 |
| टूटन ही टूटन | 76 |
| दानवी मुस्कराहट | 77 |
| मुर्दा शहर | 79 |
| भीख माँगता जीवन | 81 |
| 'सर' | 83 |
| बूढ़ी अम्मा | 84 |
| पंचगनी की एक शाम | 88 |
| खो गया 'मैं' | 90 |
| महानगर | 92 |
| एक किरण | 94 |
| रात | 96 |
| बूढ़ी-कोरी आकांक्षायें | 98 |
| लड़की और उसके सपने | 99 |
| असीम, तुम्हारे आँचल तले | 100 |
| शरत् कालीन साँझ | 102 |
| कोयना घाटी | 104 |
| ओ! सूर्य की प्रथम किरण | 106 |

जीवन-स्वप्न चक्र-सा 107

ये सलाखें 108